टी जी एन कुमार

बनाम

केरल राज्य व अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 1854, 2008)

14 जनवरी, 2011

(डी.के. जैन, अशोक कुमार गांगुली और एच.एल. दत्तू, जे.जे.)

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973

धारा 205, 313, 482 और 483 सहपठित अनुच्छेद 227 संविधान- उच्च न्यायालय की शक्तियाँ-एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए शिकायत- धारा 482 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त द्वारा याचिका- द.प्र.सं. की धारा 205 के तहत विवेकाधिकार लागू करने के लिए तकनीकी प्रकृति के और नैतिक अधमता को छोड़कर अपराधों से जुड़े मामलों के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा सभी आपराधिक अदालतों को सामान्य निर्देश और यह निर्देश भी कि पहली बार में केवल एक समन जारी किया जाएगा- अभिनिर्धारित:

यह संतुष्टि कि कोई आरोपी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट का हकदार है या नहीं केवल मजिस्ट्रेट की होनी चाहिए और किसी की नहीं

और यह विवेकाधिकार किन्ही सामान्य दिशा-निर्देशों से परिचालित नहीं हो सकता- इसी प्रकार, अभियुक्त के लिखित बयान को स्वीकार करने और उस पर विचार करने का निर्देश न तो सीऔरपीसी की धारा 313 की भाषा के अनुरूप है और न ही एफ सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित आदेश के अनुरूप है- धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां और संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग संयमित ढंग से और केवल उचित मामलों में किया जाना चाहिए।

- वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने सामान्य दिशा निर्देश निर्धारित करने में द.प्र.सं. की धारा 482 और/संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है जो धारा 205 और 313 द.प्र.सं. की स्पष्ट भाषा के साथ असंगत हैं।- सामान्य दिशा-निर्देशों वाला आक्षेपित आदेश अपास्त- भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 227- न्यायिक औचित्य- आपराधिक न्याय प्रशासन।

न्यायिक औचित्य:

उच्च न्यायालय ने धारा 205 के तहत आरोपी की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने और धारा 313 द.प्र.सं. के तहत आरोपी के लिखित बयान को स्वीकार करने के संबंध में सामान्य निर्देश जारी किए- अभिनिर्धारितः सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों के आलोक में, इसी मुद्दे पर उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए आगे के निर्देश अनावश्यक

हैं- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 205, 313 और 482- भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 227।

अपीलकर्ता ने परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (एनआई अधिनियम) की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की। मजिस्ट्रेट द्वारा सम्म्न से तलब किए जाने पर आरोपी ने अन्य बातों के साथ-साथ द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसमें उसने मजिस्ट्रेट के सामने पेशी के दौरान अपनी निजी उपस्थिति से छूट प्रदान करने की प्रार्थना की। एकल न्यायाधीश ने याचिका को स्वीकार करते हुए आरोपी को अपने वकील के माध्यम से विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने की अनुमति देते हुए सभी आपराधिक अदालतों को विचारण आयोजित करने के संबंध में सामान्य निर्देश जारी किए, खासकर एनआई एक्ट की धारा 138 के तहत अपराधों से जुड़े मामलों में व अन्य सभी मामलों में, जिनमें तकनीकी प्रकृति के अपराध शामिल हों और जिनमें नैतिक अधमता शामिल न हो।

शिकायतकर्ता द्वारा दायर की गई अपील को सुप्रीम कोर्ट की एक खंड पीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया गया था, जिसने मामले को एक बड़ी पीठ को संदर्भित करने की आवश्यकता महसूस की और इस प्रकार अपील को इस प्रशन पर विचार करने के लिए तीन-न्यायाधीशों की बेंच को भेजा गया था कि क्या उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482

और 483 के तहत और या भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत सभी अदालतों को अन्य बातों के साथ-साथ एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराधों का संज्ञान लेने का, संहिता की धारा 205 के तहत विवेकाधिकार लागू करने के लिए और धारा 205 के तहत सह निर्देश कि केवल सम्मन पहली बार में जारी किया जाएगा दिशा-निर्देश दिया जा सकता है।

प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में देते हुए और अपील की अनुमति देते हुए, न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित:

1.1 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 205 अदालत को एक आरोपी को व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने का विवेक प्रदान करती है जब तक कि अदालत द्वारा उसकी उपस्थिति को मुकदमें के दौरान आवश्यक नहीं माना जाता है। यह प्रावधान को से पढ़ने स्पष्ट रूप से पता चलता है कि संहिता की धारा 205 के तहत आवेदन पर विचार करते समय, मजिस्ट्रेट को मामले की प्रकृति और सम्म्न से बुलाए गए व्यक्ति के आचरण को भी ध्यान में रखना चाहिए। वह जांच करेगा कि क्या व्यक्तिगत उपस्थिति की आवश्यकता से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होगा और क्या अभियुक्त की अनुपस्थिति के कारण मुकदमें की प्रगति बाधित होने की संभावना है। इसलिए, किसी अभियुक्त को व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी जानी चाहिए या नहीं, इसकी संतुष्टि उस मजिस्ट्रेट को होनी

चाहिए, जो संबधित मुकदमे की प्रगति के मामले में अदालत का मास्टर है और किसी की नहीं। (पैरा 6 और 7) (446-सी-एच; 447-ए)

ऐसे.वी. मुजुमदार एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य उर्वरक कंपनी लिमिटेड और अन्य। 2005 (3) ऐसेसीऔर 857 = (2005) 4 ऐसेसीसी 173- पर निर्भर था।

1.2 यह न्यायालय एफ भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड में निर्धारित दिशा-निर्देशों से सहमत है और उनकी पुनः पुष्टि करते हुए, यह न्यायालय यह जोड़ता है कि मजिस्ट्रेट का आदेश ऐसा होना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त का अनावश्यक उत्पीड़न न हो और साथ ही इससे शिकायतकर्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता हो। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी अभियुक्त को व्यक्तिगत उपस्थिति से दी गई छूट का दुरुपयोग मुकदमे में देरी के लिए न किया जाए। इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानूनी सिद्धांतों के मद्देनजर, मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार के बारे में विवादित आदेश स्पष्ट रूप से गलत है।

संहिता की धारा 205 के तहत इस संबंध में कोई भी सामान्य निर्देश निर्धारित करके इसे सीमित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 8 और 9) (447-एफ-एच; 448-ए)

भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भिवानी डेनिम एंड अपैरल्स लिमिटेड एवं अन्य 2001 (2) सप्ल. ऐसेसीऔर 219 = (2001) 7 ऐसेसीसी 401- पुनः पुष्टि की गई।

मनोज नारायण अग्रवाल बनाम शशि अग्रवाल एवं अन्य 2009 (5) ऐसेसीऔर 976 = (2009) 6 ऐसेसीसी 385-पर निर्भर।

ससीन्द्रन नायर बनाम महाप्रबंधक 1996 (2) केएलटी सी 482, के.ऐसे.और.टी.सी. बनाम अब्दुल लतीफ केरल 2005 (3) केएलटी 955; रमन नायर बनाम. केरल राज्य 1999 (3) केएलटी 714; नूरजहां बनाम मोइदीन 2000 (2) केएलटी 756; और हेलेन रबर इंडस्ट्रीज एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य। 1972 के.एल.टी. 794- उद्धृत

1.3 यह भी उतना ही उचित है कि संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग परिस्थितयों के अनुसार सावधानी से और दुर्लभ मामलों में पेटेंट अवैधताओं को ठीक करने या न्याय की विफलता को रोकने के लिए किया जाना चाहिए। (पैरा 10) (448-डी)

मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य 1978 (1) ऐसेसीऔर 749 = (1977) 4 ऐसेसीसी 551-पर निर्भर।

1.4 इसी प्रकार, हालांकि यह सच है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति

प्रशासनिक और न्यायिक दोनों है, लेकिन अधीनस्थ न्यायालयों को उनके अधिकार की सीमा के भीतर बनाए रखने के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग संयमित रूप से और केवल उचित मामलों में ही किया जाना चाहिए।, किसी भी स्थिति में, किसी विशेष तरीके से कोई आदेश या निर्णय पारित करने के लिए अधीनस्थ न्यायपालिका को प्रभावित करने के लिए अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। (पैरा 11) (448-जी-एच; 449-ए-बी)

जसबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य 2006 (7) पूरक। ऐसेसीऔर 174= (2006) 8 ऐसेसीसी 295-पर निर्भर।

1.5 जहाँ तक उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के आदेश में अभियुक्त द्वारा दिए गए लिखित बयान को स्वीकार करने और उस पर विचार करने के निर्देश (iv) का संबंध है, यह फिर से धारा 313 की भाषा के अनुरूप नहीं है और न ही बसवराज और. पाटिल के मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित आदेश के अनुसार है। धारा 313 की भाषा से यह स्पष्ट है कि समन मामले में, जब अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति को संहिता की धारा 205 के तहत छूट दे दी गई है, तो संहिता की धारा 313 के तहत अभियुक्त की व्यक्तिगत परीक्षा की कठोरता से छूट देने का विवेक मजिस्ट्रेट में निहित है। बसवराज और. पाटिल के मामले में फैसले से यह स्पष्ट है कि धारा 313(1)(एच) के प्रावधान के

अनुसार किसी आरोपी की व्यक्तिगत जांच की छूट दी जाना ट्रायल कोर्ट के विवेक के अंतर्गत है, इसका प्रयोग कुछ मापदंडों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, न कि सामान्य मामले के रूप में। (पैरा 12, 13 और 15) (449-जी; 450-एफ; 451-जी)

बसवराज और. पाटिल का मामला और अन्य बनाम कामताका राज्य और अन्य। 2000 (3) सप्ल. ऐसेसीऔर 658 = (2000) 8 ऐसेसीसी 740- पर निर्भर

1.6 यह सच है कि आक्षेपित फैसले के निर्देश (vii) में, एकल न्यायाधीश ने स्पष्ट किया है कि पूर्ववर्ती पैराग्राफ में दी गई शर्तों का उद्देश्य किसी भी अलग प्रक्रिया का पालन करने के लिए अदालत के विवेक को बाधित करना नहीं है, यदि आदेश में दिए गए निर्देशों से विचलन के लिए अगर कोई बाध्यकारी आवश्यकता हो, तो मजिस्ट्रेट द्वारा 'विशिष्ट कारण' दर्ज करने की आवश्यकता है, जैसा कि उसी पैराग्राफ में निर्धारित है, अपने आप में मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में बाधा डालने के समान है। कानून में इसकी गारंटी नहीं है. (पैरा 16) (451- जी एच; 452- ए-बी)

1.7 इस प्रकार, वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने सामान्य निर्देश निर्धारित करके संहिता की धारा 482 और/या संविधान के अनुच्छेद

227 के तहत अपने क्षेत्राधिकार को पार कर लिया है, जो संहिता की धारा 205 व 313 की स्पष्ट भाषा के साथ असंगत हैं।

इस न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देश के आलोक में, उच्च न्यायालय द्वारा उसी मुद्दे पर आगे के निर्देश पूरी तरह से अनावश्यक थे। निचली अदालतों के लिए सामान्य निर्देशों को देने वाले विवादित आदेश को रद्द किया जाता है। हालाँकि, यदि अभियुक्त बताए गए समय के भीतर व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट के लिए संहिता की धारा 205 के तहत एक आवेदन के साथ निचली अदालत में जाता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा उसे दी गई छूट निचली अदालत के द्वारा उसके आवेदन के निपटारे तक लागू रहेगी। (पैरा 17 और 18)(452-सी-डी; एफ-जी)

ऐसे. पलानी वेलायुथम एवं अन्य बनाम जिला कलेक्टर, तिरुनेलवेली, तमिलनाडु और अन्य। 2009 (12) ऐसेसीऔर 1215 = (2009) 10 ऐसेसीसी 664-संदर्भित

केस कानून संदर्भ

1996 (2) के.एल.टी. 482	उद्धृत किया गया पैरा 2
2005 (3) के.एल.टी. 955	उद्धृत किया गया पैरा 2
1999 (3) के.एल.टी. 714	उद्धृत किया गया, पैरा 2
2000 (2) के.एल.टी. 756	उद्धृत किया गया, पैरा 2

1972 के.एल.टी. 794 उद्धृत किया गया, पैरा 2

2005 (3) ऐसेसीऔर 857 पैरा 7 पर आधारित

2001 (2) सप्ल. ऐसेसीऔर 219 के पैरा 2 की फिर से पुष्टि की

2009 (5) ऐसेसीऔर 976 के पैरा 9 पर आधारित

1978(1) ऐसेसीऔर 749 के पैरा 10 पर आधारित

2006 (7) सप्ल. ऐसेसीऔर 174 के पैरा 11 पर आधारित

2000 (3) सप्ल. ऐसेसीऔर 658 के पैरा 12 पर आधारित

2009 (12) ऐसेसीऔर 1215 का पैरा 17 संदर्भित किया गया

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1854/ 2008

उच्च न्यायालय केरल,एर्नाकुलम आपराधिक विविध मामला सं. 1977, 2007 में निर्णय और आदेश दिनांक 04.09.2008 से।

सुमिता हजारिका, जेड.के. जमी, तपेश कुमार सिंह, गोपाल झा, आशुतोष, जी. प्रकाश, बीना प्रकाश, वी. सेंथिल, सीबो संकर मिश्रा उपस्थित पक्षकारों के लिए

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

डी.के. जैन, जे.: 1. विशेष अनुमति द्वारा इस अपील में 4 सितंबर, 2008 को केरल उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा

2007 की क्रिमनल एम.सी. संख्या 1977 में पारित आदेश को चुनौती दी गई है। जिसके तहत सभी आपराधिक अदालतों को कई सामान्य निर्देश जारी किए गए हैं, जिन्हें विशेष रूप से परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (संक्षेप में "एन.आई. अधिनियम") की धारा 138 के तहत अपराध से जुड़े मामलों व साथ ही अन्य सभी मामलों में भी जिनमें ऐसे अपराध शामिल हैं जो तकनीकी प्रकृति के हैं और जिनमें कोई नैतिक अधमता शामिल नहीं है, में सुनवाई करने के लिए कहा जाता है।

2. मौजूदा विवाद को देखते हुए, इस अपील को जन्म देने वाले तथ्यों को विस्तार से बताना अनावश्यक है, सिवाय इसके कि वर्तमान मामला एनआई की धारा 138 के तहत दायर एक शिकायत से उत्पन्न हुआ है। मजिस्ट्रेट द्वारा सम्मन से बुलाए जाने पर, आरोपी ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "संहिता") की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ मजिस्ट्रेट के समक्ष अपनी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने की प्रार्थना की गई। जैसा कि पूर्वोक्त कहा गया है, उच्च न्यायालय ने उक्त आवेदन को स्वीकार करते हुए और आरोपी को अपने वकील के माध्यम से विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने की अनुमति देते हुए महसूस किया कि "बिना किसी नैतिक भ्रष्टता वाले अपराधी" या कथित तौर पर केवल तकनीकी अपराध, जिसमें धारा 138 के तहत अपराध भी शामिल है विशेष रूप से किसी अपराध के दोषी अपराधी के प्रति रवैये पर आपराधिक

अदालतों में प्रक्रिया को तर्क संगत, मानवीय और सरल बनाने की बहुत आवश्यकता है।।

भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भिवानी डेनिम एंड अपैरल्स लिमिटेड और अन्य में इस न्यायालय के निर्णय पर तथा ससीन्द्रन नायर बनाम महाप्रबंधक में केरल उच्च न्यायालय के, के.ऐसे.और.टी.सी. बनाम अब्दुल लतीफ; रमन नायर बनाम केरल राज्य; नूरजहाँ बनाम मोइदीन और हेलेन रबर इंडस्ट्रीज और अन्य बनाम केरल राज्य व अन्य के निर्णय पर भरोसा करते हुए विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित 'मार्गदर्शन के नियम' जारी किए हैं, इस निर्देश के साथ कि इन्हें तत्काल हस्तगत प्रकरण की निचली अदालत के साथ-साथ सभी आपराधिक अदालतों, जिनके द्वारा एन.आई. की धारा 138 के तहत मुकदमों का निपटारा करती हैं, निश्चित रूप से पालन किया जाना चाहिए

(i) इसके बाद सभी 138 अभियोजनों में, यह तथ्य कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत एक अभियोजन में, सभी आपराधिक अदालतों द्वारा सीऔर.पी.सी. की धारा 205 के तहत विवेकाधिकार का आह्वान करने के लिए और धारा 205 सीऔरपीसी के तहत प्रथम बार में केवल एक सम्मन जारी करने के लिए पर्याप्त कारण माना जाएगा। 138 के सभी लंबित मामलों में भी धारा 205 सीऔरपीसी

के तहत आवेदन की अनुमति दी जाकर आरोपियों को उनके वकील के माध्यम से पेश होने की अनुमति दी जाए।

(ii) दोषी या निर्दोष होने की दलील विधिवत नियुक्त वकील के माध्यम से दर्ज की जा सकती है और उस उद्देश्य के लिए आरोपी की व्यक्तिगत उपस्थिति पर जोर नहीं दिया जाएगा।

(iii) जब आरोपी को व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी जाती है तब सीआरपीसी की धारा 273 के अधीन सक्षम वकील की उपस्थिति में धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत मुकदमे में साक्ष्य दर्ज किया जा सकता है और इस प्रयोजन के लिए, अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति पर जोर नहीं दिया जाएगा।

1. (2001) 7 ऐसेसीसी 401।

2. 1996 (2) केएलटी 482।

3. 2005 (3) केएलटी 955।

4. 1999 (3) केएलटी 714।

5. 2000 (2) केएलटी 756।

6. 1972 के.एल.टी., 794

(iv) धारा 313 (बी) सीआरपीसी के तहत परीक्षा को धारा 313 (1) के प्रावधान के तहत समाप्त किया जा सकता है और यदि आरोपी अपना

रुख स्पष्ट करते हुए एक बयान दाखिल करता है, तो सीआरपीसी की धारा 233 और 243 के अधीन समन मामले में मुकदमे की प्रक्रिया के समान प्रावधानों की अनुपस्थिति के बावजूद उसे अदालत द्वारा ग्राह्य किया जा सकता है। अभियुक्त से पूछताछ करने की शक्ति और दायित्व उसे उसके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली परिस्थितियों को समझाने में सक्षम बनाना चाहिए, ऐसी स्थिति में अदालत को अभियुक्त द्वारा दिए गए लिखित बयान को स्वीकार करने और उस पर विचार करने के लिए बाध्य होना चाहिए।

(v) यदि सजा जुर्माने की है या निर्णय बरी करने का है, तो निर्णय प्राप्त करने के लिए भी अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति पर जोर देना आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। निर्णय सुनाए जाने के बाद अभियुक्त को सजा भुगतने के लिए व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए एक विशिष्ट तिथि तक टाला जा सकता है। उस तारीख तक, निश्चित रूप से, आरोपी के लिए यह खुला रहेगा कि वह अदालत के समक्ष पेश होकर वरिष्ठ न्यायालय के निलंबन का आदेश प्राप्त कर सके।

(vi) जहां 138 अभियोजन में वारंट जारी किया जाना है वहां धारा 87 के तहत गैर जमानती वारंट जारी करने से पूर्व प्रथम बार धारा 88 सीआरपीसी के तहत सामान्यतः एक जमानती वारंट आवश्यक रूप से जारी किया जाना चाहिए।

(vii) उपरोक्त शर्तों को केवल सामान्य परिस्थितियों में ही लागू माना जा सकता है और यदि अनिवार्य आवश्यकता हो तो किसी भी अलग प्रक्रिया का पालन करने के लिए अदालत के विवेक को बाधित करने का इरादा नहीं है। ऐसी स्थिति में, मजिस्ट्रेट के आदेश/निर्देश में स्पष्ट रूप से विचलन का सहारा क्यों लिया जाता है, इस संबंध में स्पष्ट रूप से दर्शाए जाएंगे

(viii) यह कहने की जरूरत नहीं है कि किसी भी व्यक्ति को यदि यह शिकायत है कि उपरोक्त प्रक्रिया का अनुचित तरीके से पालन नहीं किया गया है तो उसके पास हमेशा सीऔरपीसी की धारा 482 के तहत निर्देशों के लिए इस न्यायालय से संपर्क करने का विकल्प रहेगा। सत्र न्यायाधीशों और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों यह को भी आवश्यक रूप से ऐसा सुनिश्चित करें कि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा इन निर्देशों का अक्षरशः पालन किया जाए। मानवाधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता-और यह सुनिश्चित करने की चाहत कि अदालतें उपयोगकर्ता के अनुकूल होना एक आधुनिक न्यायिक व्यक्तित्व की सम्पत्ति है और न्यायिक प्रदर्शन के मूल्यांकन के लिए वरिष्ठाेंं द्वारा एक न्यायिक अधिकारी की ऐसी प्रतिबद्धताओं पर अवश्य ध्यान देना चाहिए

(ix) "भले ही उपरोक्त निर्देश परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अभियोजन के विशिष्ट संदर्भ में जारी किए गए हैं, उनका

पालन अन्य सभी मामलों में भी किया जाना चाहिए जहां कथित अपराध तकनीकी है और इसमें कोई नैतिक अधमता शामिल नहीं है।"

3. विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त को व्यक्तिगत उपस्थिति से सामान्य छूट देने के आदेश से व्यथित होकर शिकायतकर्ता/परिवादी ने यह अपील दायर की है।

4. 17 नवंबर, 2008 को, इस मामले में अनुमति देते हुए दो विद्वान न्यायाधीशों की एक खण्डपीठ ने निम्नलिखित प्रश्न प्रस्तुत करते हुए उसके अवधारण के लिए तत्काल मामले को एक बड़ी पीठ को प्रेषित कर दिया-

> "इस विशेष अनुमति याचिका में विचार के लिए उठने वाले प्रश्नों में से एक यह है कि क्या उच्च न्यायालय परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराधों का संज्ञान लेने वाली सभी अदालतों को अन्य बातों के साथ-साथ आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 205 के तहत विवेकाधिकार लागू करने के लिए दिशानिर्देश जारी करने और यह निर्देश कि धारा 205 के तहत सम्मन पहली बार में जारी किया जाएगा, के निर्देश देने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 और 483 और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का

प्रयोग कर सकता है। इसमें शामिल प्रश्न और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के महत्व को ध्यान में रखते हुए जिन पर उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने भरोसा जताया है, हमारी राय में, हम सोचते हैं कि यह एक ऐसा मामला है जिसे एक बड़ी पीठ द्वारा सुना जाना चाहिए। इसे तदनुसार निर्देशित किया जाता है।"

इसलिए वर्तमान अपील को इस पीठ के समक्ष रखा गया है।

5. पक्षों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, हम आश्वस्त हैं कि विवादित आदेश संवहनीय नहीं है।

6. संहिता की धारा 205, जो मजिस्ट्रेट को अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने का विवेकाधिकार प्रदान करती है, इस प्रकार है-

"205 मजिस्ट्रेट का अभियुक्त को वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति दे सकना- (1) जब कभी कोई मजिस्ट्रेट समन जारी करता है, तब यदि उसे ऐसा करने का कारण प्रतीत होता है तो वह अभियुक्त को वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्त कर सकता है और अपने प्लीडर द्वारा हाजिर होने की अनुज्ञा दे सकता है"

(2) किंतु मामले की जांच का विचारण करने वाला मजिस्ट्रेट, स्वविवेकानुसार, कार्यवाही के किसी प्रक्रम में अभियुक्त की वैयक्तिक

हाजिरी का निदेश दे सकता है और यदि आवश्यक हो तो उसे इस प्रकार हाजिर होने के लिए इसमें इसके पूर्व उपबंधित रीति से विवश कर सकता है"

7. यह धारा न्यायालय को एक अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति से उस समय तक छूट देने का विवेकाधिकार प्रदान करती है जब तक कि न्यायालय द्वारा उसकी उपस्थिति को विचारण के दौरान आवश्यक नहीं माना जाता है। इस प्रावधान को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह होता है कि संहिता की धारा 205 के तहत आवेदन पर विचार करते समय मजिस्ट्रेट को मामले की प्रकृति के साथ-साथ सम्मनित व्यक्ति के आचरण को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। वह जांच करेगा कि क्या अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति की आवश्यकता से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होगा या क्या उसकी अनुपस्थिति के कारण मुकदमे की प्रगति में बाधा आने की संभावना है। (देखें: ऐसे.वी. मुजुमदार और अन्य बनाम गुजरात राज्य फ़र्टिलाइज़र कंपनी लिमिटेड और अन्य।") इसलिए कोई अभियुक्त व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट पाने का हकदार है या नहीं, इस बात की संतुष्टि मजिस्ट्रेट की होनी चाहिए, जो संबंधित मुकदमे की प्रगति के मामले में अदालत का मास्टर होता है, न की किसी और की।

8. भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित दिशानिर्देश तय किए थे, जिन्हें एनआई अधिनियम की धारा

138 के तहत एक मामले में एक आरोपी की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट की मांग करने वाले आवेदन से निपटने के दौरान ध्यान में रखा जाना चाहिए।

> " समन मामले में अभियुक्त को पूरे समय के लिए या विचारण के किसी विशेष प्रक्रम पर व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देना मजिस्ट्रेट की शक्ति व उसके विवेकाधिकार के अंतर्गत है, यदि मजिस्ट्रेट को लगता है कि व्यक्तिगत उपस्थिति पर जोर देने से उसे भारी क्लेश व पीड़ा होगी और उसका तुलनात्मक लाभ कम होगा। इस तरह के विवेक का प्रयोग केवल दुर्लभ मामलों में किया जाना चाहिए, जहां आरोपी दूर रहता है या व्यवसाय करता है या किसी भौतिक कारण या अन्य अच्छे कारणों से मजिस्ट्रेट को लगता है कि अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देना केवल न्याय के हित में होगा। हालाँकि, जो मजिस्ट्रेट अभियुक्त को इस तरह का लाभ देता है, उसे स्वाभाविक रूप से ऊपर बताई गई सावधानियां बरतनी चाहिए।"

हम उपरोक्त दिशा निर्देशों से सम्मानपूर्वक सहमत हैं और इसकी पुनः पुष्टि करते हुए, हम यह जोड़ेंगे कि मजिस्ट्रेट का आदेश ऐसा होना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को अनावश्यक उत्पीड़न न हो और

साथ ही शिकायतकर्ता पर कोई पूर्वाग्रह कारित न हो। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी आरोपी को दी गई व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट का दुरुपयोग मुकदमे में देरी के लिए नहीं किया जाए।

9. उपर्युक्त कानूनी सिद्धांतों के प्रकाश में, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से गलत है क्योंकि संहिता की धारा 205 के तहत मजिस्ट्रेट के विवेक को उस संबंध में कोई सामान्य निर्देश देकर सीमित नहीं किया जा सकता है। मनोज नारायण अग्रवाल बनाम शशि अग्रवाल और अन्य में इस न्यायालय ने यह देखते हुए कि उच्च न्यायालय संहिता की धारा 205 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक के प्रयोग के लिए निर्देश नहीं दे सकता है, निम्नलिखित विचार व्यक्त किए:-

> "इसी प्रकार, उच्च न्यायालय को, सभी इरादों और आशयों के लिए, व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने का निर्देश जारी नहीं करना चाहिए था। इस तरह के मामले को निस्संदेह विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष विचार के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। हमें यकीन है कि मजिस्ट्रेट इस अधिकार का निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से प्रयोग करेंगे।

10. यह भी उतना ही सामान्य है कि संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए और दुर्लभ मामलों में ही पेटेंट अवैधताओं को ठीक करने या

न्याय की विफलता को रोकने के लिए किया जाना चाहिए। मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य में इस न्यायालय के तीन विद्वान न्यायाधीशों की एक पीठ ने देखा था कि

".....उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांतों पर ध्यान दिया जा सकता है.....-

(1) कि यदि पीड़ित पक्ष की शिकायत के निवारण के लिए संहिता में कोई विशिष्ट उपचार है तो शक्ति का सहारा नहीं लिया जा सकता।

(2) कि किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए इसका बहुत संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए

(3) कि इसका प्रयोग संहिता के किसी भी अन्य प्रावधान में दिए गए कानून के स्पष्ट निषेध के विपरीत नहीं किया जाना चाहिए।

11. इसी प्रकार, जबकि यह सच है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति प्रशासनिक और न्यायिक दोनों है,

8. (2009) 6 ऐसेसीसी 385।

9. (1977) 4 ऐसेसीसी 551

लेकिन ऐसी शक्ति का प्रयोग संयमित ढंग से और केवल उचित मामलों में ही किया जाना चाहिए ताकि अधीनस्थ न्यायालयों को उनके अधिकार की सीमा के भीतर रखने के लिए किया जा सके। किसी भी स्थिति में, अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग किसी अधीनस्थ न्यायपालिका को कोई आदेश या निर्णय पारित करने के लिए प्रभावित करने के लिए नहीं किया जा सकता है। जसबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में इस न्यायालय ने देखा कि:

> "इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 227 के प्रावधानों को लागू करते समय भी, यह प्रावधान किया गया है कि उच्च न्यायालय अधीनस्थ अदालतों को अपने अधिकार की सीमा के भीतर रखने के लिए ऐसी शक्तियों का प्रयोग बहुत कम और केवल उचित मामलों में करेगा। अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों की शक्ति पर किए गए अधीक्षण का अर्थ यह नहीं है कि उच्च न्यायालय निचली न्यायपालिका के न्यायिक कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता है। अपने न्यायिक कार्यों के निर्वहन में अधीनस्थ न्यायालयों की स्वतंत्रता अत्यंत महत्वपूर्ण है, जैसे कि वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायिक कार्यों के निर्वहन की स्वतंत्रता। अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य, जो मामले की कार्यवाही के दौरान पार्टियों के साथ सीधे बातचीत करते हैं और इसलिए, यह

कम महत्वपूर्ण नहीं है कि उनकी स्वतंत्रता को वादियों की संतुष्टि के लिए प्रभावी ढंग से संरक्षित किया जाना चाहिए।" (यह भी देखें: त्र्यंबक गंगाधर तेलंग और अन्य बनाम रामचन्द्र गणेश भिडे और अन्य, मोहम्मद यूनुस बनाम मोहम्मद मुस्तकिम और अन्य और राज्य, नई दिल्ली बनाम नवजोत संधू और अन्य)

12. जहां तक अभियुक्त द्वारा दिए गए लिखित बयान को स्वीकार करने और उस पर विचार करने के निर्देश (iv) का संबंध है, हमारी राय में, यह फिर से संहिता की धारा 313 की भाषा के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा बासवराज-और पाटिल एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य में निर्धारित आदेश के अनुरूप नहीं है। संहिता की धारा 313 अभियुक्त की व्यक्तिगत जांच से संबंधित है और यह प्रावधान करती है कि -

---

10. (2006) 8 ऐसेसीसी 294

11. (1977) 2 ऐसेसीसी 437

12. (1983) 4 ऐसेसीसी 566।

13. (2003) 6 ऐसेसीसी 641।

"313. अभियुक्त की परीक्षा करने की शक्ति- (1) प्रत्येक जांच या विचारण में, इस प्रयोजन से कि अभियुक्त अपने विरूद्घ साक्ष्य से

प्रकट होने वाली किन्हीं परिस्थितियों का स्वयं स्पष्टीकरण कर सके, न्यायालय-

(क) किसी भी स्तर पर, अभियुक्त को पूर्व चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जैसा न्यायालय आवश्यक समझे

(ख) अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच करने के बाद और अपने बचाव के लिए बुलाए जाने से पहले, मामले पर उससे साधारणतया प्रश्न करेगा:

परन्तु किसी समन-मामले में, जहां न्यायालय ने अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति दे दी है, वहां वह खंड (ख) के अधीन उसकी परीक्षा से भी अभिमुक्ति दे सकता है।

.....

....."

(हमारे द्वारा इस पर बल दिया)

13. धारा 313 की भाषा से यह स्पष्ट है कि समन मामले में, जब अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति को संहिता की धारा 205 के तहत छूट दे दी गई है, तो संहिता की धारा 313 के तहत अभियुक्त की व्यक्तिगत परीक्षा की कठोरता से छूट देने का विवेक मजिस्ट्रेट में निहित है।

14. बसवराज और. पाटिल और अन्य में (सुप्रा) कम गंभीर अपराधों में व्यावहारिक और मानवतावादी दृष्टिकोण की वकालत करते हुए, जी थॉमस, जे. ने तीन विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ में बहुमत के लिए बोलते हुए, संहिता की धारा 313(1) के खंड (बी) के दायरे को इस प्रकार समझाया है:

> "संहिता की धारा 313(1) के खंड (बी) में "होगा" शब्द की व्याख्या अदालत पर आज्ञात्मक के रूप में की जानी चाहिए और इसका अनुपालन तब किया जाना चाहिए जब यह अभियुक्त के लाभ के लिए हो। लेकिन अगर अदायलत को इससे बड़ा पूर्वाग्रह और नुकसान उठाने के रूप में काम करता है तो उचित मामलों में, उदाहरण के लिए, यदि अभियुक्त अदालत को संतुष्ट करता है कि वह भारी खर्चा वहन करने के बिना अदालत के स्थल तक पहुंचने में असमर्थ है या किसी शारीरिक अक्षमता या ऐसी कोई अन्य कठिनाई के कारण वह लंबी दूरी की यात्रा करने में असमर्थ है, उसे ऐसी कठिनाई से राहत दे और साथ ही संहिता की धारा 313 में आवश्यकताओं का पर्याप्त तरीके से अनुपालन करने के लिए एक उपाय अपनाएं। इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

यदि अभियुक्त (जिसे पहले से ही व्यक्तिगत रूप से अदालत में उपस्थित होने से छूट प्राप्त है) अदालत में प्रार्थना करते हुए यह आवेदन करता है कि उसे उचित आवश्यकता के कारण अदालत में अपनी भौतिक उपस्थिति के बिना सवालों का जवाब देने की अनुमति दी जा सकती है, तो अदालत उस पर उचित आदेश पारित कर सकती है, बशर्ते कि इस तरह के आवेदन के साथ अभियुक्त द्वारा शपथ लिया गया एक हलफनामा संलग्न हो, जिसमें निम्नलिखित बातें शामिल हों:

(ए) अदालत में ऐसे उत्तर देने के लिए शारीरिक रूप से उपस्थित होने में कठिनाइयो के संबंध में उसकी वास्तविक स्थिति के बारे में संतुष्ट करने के लिए तथ्यों का विवरण।

(बी) एक आश्वासन कि इस तरह की पूछताछ के दौरान उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति को समाप्त करने से किसी भी तरह से उसके साथ कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा।

(सी) एक वचन पत्र कि वह मामले के किसी भी स्तर पर इस संबंध में कोई शिकायत नहीं उठाएगा।"

15. उपरोक्त उद्धृत अंश से यह स्पष्ट है कि उक्त प्रावधान के संदर्भ में किसी अभियुक्त की व्यक्तिगत परीक्षा से छूट विचारण न्यायालय

के विवेक के अंतर्गत है, जिसे इसमें उल्लिखित कुछ मापदंडों को ध्यान में रखते हुए प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि अनिवार्य रूप में।

16. यह सच है कि निर्देश (vii) सुप्रा में, विद्वान न्यायाधीश ने स्पष्ट किया है कि पूर्ववर्ती पैराग्राफ में दी गई शर्तों का उद्देश्य किसी अलग प्रक्रिया का पालन करने के लिए अदालत के विवेक को बाधित करना नहीं है, यदि कोई अनिवार्य आवश्यकता है, लेकिन विचलन के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा 'विशिष्ट कारण' दर्ज करने के निर्देश देने का आदेश, जैसा कि उसी पैराग्राफ में निर्धारित है, हमारे विचार में यह अपने आप में मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में बाधा डालने के समान है। जिसकी कानून में गारंटी नहीं है।

17. इस प्रकार, मौजूदा मामले में, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उच्च न्यायालय ने उपरोक्त सामान्य निर्देशों को निर्धारित करके संहिता की धारा 482 और/या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है। जो संहिता की धारा 205 और 313 की स्पष्ट भाषा के साथ असंगत है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। हम इस न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त दिशा निर्देशों के आलोक में ऐसा महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा इसी मुद्दे पर आगे के निर्देश पूरी तरह से अनावश्यक थे। इस संबंध में, ऐसे. पलानी वेलायुथम एवं अन्य बनाम जिला कलेक्टर, तिरुनेलवेली, तमिलनाडु और

अन्य में निम्नलिखित टिप्पणियाँ बिल्कुल उपयुक्त हैं: "अदालतों को सत्तावादी बनने के प्रलोभन से बचना चाहिए। हम ऐसे कई उदाहरण देख रहे हैं, जहां न्याय करने की चिंता में अदालतें हद से ज़्यादा आगे बढ़ गई हैं, जिसका परिणाम न्याय के बजाय अन्याय होता है। ऐसा कहा जाता है कि सारी शक्ति विश्वास है और बड़ी शक्ति के साथ बड़ी जिम्मेदारी आती है।"

18. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अपील स्वीकार की जाती है, और निचली अदालतों के लिए सामान्य निर्देश देने वाले आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है। हालाँकि, हम निर्देश देते हैं कि यदि अभियुक्त इस फैसले की प्रति प्राप्त होने के चार सप्ताह के भीतर व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट के लिए संहिता की धारा 205 के तहत एक आवेदन के साथ ट्रायल कोर्ट में जाता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा उसे दी गई छूट विचारण न्यायालय द्वारा उसके आवेदन का निपटारा होने तक यह लागू रहेगी

और.पी

-अपील स्वीकार-

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मोहन लाल (आर.जे.एस) द्वारा किया गया है।

अस्वीकारण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।